



2026:AHC: 171722

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

आपराधिक अपील संख्या - 1389/1983

सत्य पाल और अन्य

.....अपीलार्थी(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

अपीलार्थी(गण) के अधिवक्ता	: जी.एस. चतुर्वेदी, कृष्ण कांत दुबे, प्रशांत व्यास, संतोष कुमार दुबे
प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता	: ए.जी.ए.

न्यायालय संख्या - 80

माननीय न्यायमूर्ति नंद प्रभा शुक्ला

1. अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण कांत दुबे, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया।
2. यह अपील तृतीय अपर सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा आपराधिक सत्र परीक्षण संख्या 288 वर्ष 1980 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 02.06.1983 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थी संख्या 1 सत्य पाल को धारा 148 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास, धारा 324 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास और धारा 149 के साथ पठित धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत 6 माह के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और अपीलार्थी संख्या 2 और 3, अर्थात् श्री किशन के पुत्र राकेश और चेत राम के पुत्र राकेश को धारा 147 भा.द.सं. के अंतर्गत 12 माह के कठोर कारावास, धारा 149 के साथ पठित धारा 324 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास और धारा 149 के साथ पठित धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत 6 माह के कठोर कारावास सजा प्रत्येक को दी गई है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



3. आज, वर्तमान आपराधिक अपील प्राथमिकता के आधार पर इस उच्च न्यायालय में सबसे पुराने लंबित वादों की श्रेणी के अंतर्गत सूचीबद्ध है।

4. कार्यालय की रिपोर्ट दिनांक 23.07.2026 के अनुसार, अपीलार्थी संख्या 1 सत्य पाल, अपीलार्थी संख्या 2 राकेश, पुत्र श्री किशन और अपीलार्थी संख्या 3 राकेश, पुत्र चेत राम जीवित हैं और उन्हें व्यक्तिगत रूप से तामील करा दिया गया है।

5. अभिलेखों के परिशीलन से, यह ज्ञात होता है कि अपीलार्थी संख्या 1 सत्य पाल, अपीलार्थी संख्या 2 राकेश, पुत्र श्री किशन और अपीलार्थी संख्या 3 राकेश, पुत्र चेत राम जीवित हैं और अपीलार्थी संख्या 1 सत्य पाल को धारा 148 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास, धारा 324 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास और धारा 149 के साथ पठित धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत 6 माह के कठोर कारावास के अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है और अपीलार्थी संख्या 2 और 3, अर्थात् श्री किशन के पुत्र राकेश और चेत राम के पुत्र राकेश को धारा 147 भा.द.सं. के अंतर्गत 12 माह के कठोर कारावास, धारा 149 के साथ पठित धारा 324 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास और धारा 149 के साथ पठित धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत 6 माह के कठोर कारावास की सजा से प्रत्येक को दोषसिद्ध किया गया है।

6. **सुभाष चंद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [2015 लॉ सूट (इलाहाबाद) 1343]** के वाद में और इस न्यायालय द्वारा 11.01.2019 को **आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1319 वर्ष 1999 (हरगोविंद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)** में पारित निर्णय में

अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 3 इस प्रकार है:

"3. भर्त्सना के पश्चात कतिपय अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति.- जब कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अंतर्गत दंडनीय अपराध या भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अंतर्गत दो वर्ष से अनधिक के कारावास या जुर्माने या दोनों से दंडनीय किसी अपराध का दोषी पाया जाता है, और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया गया है, उसकी राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, ऐसा करना समीचीन है, तो उस समय

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे किसी सजा से दंडित करने या धारा 4 के अंतर्गत सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करने के बजाय उचित भर्त्सना के पश्चात् रिहा कर सकता है।

स्पष्टीकरण.- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि में इस धारा या धारा 4 के अंतर्गत उसके विरुद्ध दिया गया कोई पूर्व आदेश शामिल होगा।"

7. इस प्रकार, यह विद्वान विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय का भी बाध्यकारी कर्तव्य था कि वे इस बात पर विचार करें कि वे अपराधी परीक्षा अधिनियम का लाभ देने के लिए आगे क्यों नहीं बढ़ें। अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 इस प्रकार है:

"4. सदाचरण की परीक्षा पर कतिपय अपराधियों को रिहा करने की न्यायालय की शक्ति।-(1)

जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया गया है उसकी यह राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, तो उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे तुरंत कोई सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभूओं के साथ या उनके बिना एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर रिहा किया जाए, ताकि वह तीन वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि के दौरान, जैसा न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित हो सके और सजा प्राप्त कर सके, और इस बीच शांति बनाए रखे तथा सदाचरण का पालन करे:

बशर्ते कि न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके प्रतिभू, यदि कोई हो, का उस स्थान पर कोई निश्चित निवास या नियमित व्यवसाय है, जहां न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करता है या जिसमें अपराधी के उस अवधि के दौरान रहने की संभावना है जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है।

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत कोई आदेश देने से पूर्व, न्यायालय मामले के संबंध में संबंधित परीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगा।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



(3) जब उप-धारा (1) के अंतर्गत कोई आदेश दिया जाता है, तो न्यायालय, यदि उसकी राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो इसके अतिरिक्त एक पर्यवेक्षण आदेश पारित कर सकता है जिसमें यह निर्देश दिया गया हो कि अपराधी आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण में ऐसी अवधि के दौरान रहेगा, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, जैसा कि उसमें विनिर्दिष्ट किया जाए, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में, ऐसी शर्तें लगा सकता है जो वह अपराधी के उचित पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझे।

(4) उप-धारा (3) के अंतर्गत पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय रिहा होने से पूर्व अपराधी से यह अपेक्षा करेगा कि वह ऐसे आदेश में विनिर्दिष्ट शर्तों और निवास, मादक पदार्थों से दूर रहने या किसी अन्य मामले के संबंध में ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन करने के लिए प्रतिभुओं के साथ या उनके बिना एक बंधपत्र प्रस्तुत करे, जो न्यायालय, विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के किए जाने को रोकने के लिए लगाना उचित समझे।

(5) उप-धारा (3) के अंतर्गत पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश के नियमों और शर्तों को समझाएगा और पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति प्रत्येक अपराधी, प्रतिभुओं, यदि कोई हों, और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी को तत्काल प्रस्तुत करेगा।"

8. द.प्र.सं. में भी इसी प्रकार का प्रावधान मिलता है। वहां, धारा 360 प्रावधान करती है:

"360. सदाचरण की परिवीक्षा पर या भर्त्सना के पश्चात रिहा करने का आदेश:

(1) जब इक्कीस वर्ष से कम आयु का न होने वाला कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है जो केवल जुर्माने से या सात वर्ष या उससे कम की अवधि के कारावास से दंडनीय है, या जब इक्कीस वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति या कोई स्त्री किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध की जाती है जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है, और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, तो यदि उस न्यायालय को जिसके समक्ष वह दोषसिद्ध किया जाता है, अपराधी की आयु, चरित्र या पूर्ववृत्त, और उन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिनमें अपराध किया गया था, यह प्रतीत होता है कि अपराधी को सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, तो न्यायालय उसे तुरंत कोई सजा देने के बजाय, यह

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



निर्देश दे सकता है कि उसे प्रतिभुओं के साथ या उनके बिना, एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर रिहा किया जाए, ताकि वह (तीन वर्ष से अनधिक) ऐसी अवधि के दौरान जैसा न्यायालय निर्देश दे, बुलाए जाने पर उपस्थित हो सके और सजा प्राप्त कर सके और इस बीच शांति बनाए रखे और सदाचरण का पालन करे:

बशर्ते कि जहां कोई प्रथम बार अपराध करने वाला किसी ऐसे द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा दोषसिद्ध किया जाता है जो उच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से सशक्त नहीं है, और मजिस्ट्रेट की यह राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, तो वह उस आशय की अपनी राय अभिलिखित करेगा, और कार्यवाहियों को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत करेगा, और अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजेगा या उसकी उपस्थिति के लिए जमानत लेगा, जो उप-धारा (2) द्वारा उपबंधित तरीके से मामले का निस्तारण करेगा।

(2) जहां कार्यवाहियां उप-धारा (1) द्वारा उपबंधित रूप में प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत की जाती हैं, तो ऐसा मजिस्ट्रेट उस पर ऐसी सजा पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जो वह तब पारित करता या देता यदि मामले की सुनवाई मूल रूप से उसके द्वारा की गई होती, और, यदि वह समझता है कि किसी भी बिंदु पर आगे की जांच या अतिरिक्त साक्ष्य आवश्यक है, तो वह स्वयं ऐसी जांच कर सकता है या ऐसा साक्ष्य ले सकता है या ऐसी जांच करने या साक्ष्य लेने का निर्देश दे सकता है।

(3) किसी भी ऐसे मामले में जिसमें किसी व्यक्ति को चोरी, भवन में चोरी, बेईमानी से दुर्विनियोग, धोखाधड़ी या भा.द.सं. (1860 का 45) के अंतर्गत किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, जो दो वर्ष से अनधिक के कारावास से दंडनीय है या केवल जुर्माने से दंडनीय कोई अपराध है और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं होती है, तो न्यायालय जिसके समक्ष उसे इस प्रकार दोषसिद्ध किया जाता है, यदि वह उचित समझे, तो अपराधी की आयु, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति और अपराध की तुच्छ प्रकृति या किसी भी ऐसी कम करने वाली परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिनके अंतर्गत अपराध किया गया था, उसे किसी सजा से दंडित करने के बजाय, उचित भर्त्सना के पश्चात रिहा कर सकता है।

(4) इस धारा के अंतर्गत कोई आदेश किसी अपीलीय न्यायालय द्वारा या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय द्वारा अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय दिया जा सकता है।

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



(5) जब किसी अपराधी के संबंध में इस धारा के अंतर्गत कोई आदेश दिया गया हो, तो उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, अपील पर जब ऐसे न्यायालय में अपील का अधिकार हो, या अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय, ऐसे आदेश को अपास्त कर सकता है, और उसके स्थान पर ऐसे अपराधी को विधि के अनुसार सजा पारित कर सकता है: बशर्ते कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय इस उप-धारा के अंतर्गत उस सजा से अधिक सजा नहीं देगा जो उस न्यायालय द्वारा दी जा सकती थी, जिसके द्वारा अपराधी को दोषसिद्ध किया गया था।

(6) धारा 121, 124 और 373 के प्रावधान, जहां तक संभव हो, इस धारा के प्रावधानों के अनुसरण में प्रस्तुत प्रतिभूओं के मामले में लागू होंगे।

(7) न्यायालय, उप-धारा (1) के अंतर्गत किसी अपराधी की रिहाई का निर्देश देने से पूर्व, इस बात से संतुष्ट होगा कि अपराधी या उसके प्रतिभू (यदि कोई हो) का उस स्थान पर निश्चित निवास या नियमित व्यवसाय है जिसके लिए न्यायालय कार्य करता है या जिसमें अपराधी के शर्तों के पालन के लिए नामित अवधि के दौरान रहने की संभावना है।

(8) यदि अपराधी को दोषसिद्ध करने वाला न्यायालय, या कोई न्यायालय जो अपराधी के मूल अपराध के संबंध में उससे निपट सकता था, संतुष्ट है कि अपराधी अपने मुचलके की किसी भी शर्त का पालन करने में विफल रहा है, तो वह उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी कर सकता है।

(9) किसी ऐसे वारंट पर गिरफ्तार किए जाने पर अपराधी को वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष तत्काल लाया जाएगा, और ऐसा न्यायालय या तो मामले की सुनवाई होने तक उसे हिरासत में रिमांड पर भेज सकता है या उसे सजा के लिए उपस्थित होने की शर्त पर पर्याप्त प्रतिभू के साथ जमानत पर रिहा कर सकता है और ऐसा न्यायालय, मामले की सुनवाई के पश्चात, सजा पारित कर सकता है।

(10) इस धारा की कोई भी बात अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20), या बाल अधिनियम, 1960 (1960 का 60), या किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के प्रावधानों को प्रभावित नहीं करेगी।"

पुनः, धारा 361 इस प्रकार है:

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



"361. कतिपय वादों में दर्ज किए जाने वाले विशेष कारण.- जहां किसी वाद में न्यायालय निपट सकता था-

(क) किसी अभियुक्त से धारा 360 या अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20) के प्रावधानों के अंतर्गत, या

(ख) किसी किशोर अपराधी से बाल अधिनियम, 1960 (1960 का 60), या किशोर अपराधियों के उपचार, प्रशिक्षण या पुनर्वास के लिए उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अंतर्गत, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया है, तो वह अपने निर्णय में ऐसा न करने के विशेष कारणों को दर्ज करेगा।"

9. ये वैधानिक प्रावधान बहुत दृढ़ता से सजा देने के सुधारात्मक और उपचारात्मक उद्देश्य को निर्धारित करते हैं और विचारण न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय न्यायालयों को विधि के अंतर्गत उपबंधित उचित मामलों में परीक्षा का लाभ देने के लिए बाध्य करते हैं। दुर्भाग्य से, विधि की इस शाखा का विचारण न्यायालयों द्वारा अधिक उपयोग नहीं किया गया है। न्याय प्रशासन की हमारी प्रणाली में यह अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है जहां विचारण अक्सर लंबे समय के बाद समाप्त होता है और जब तक निर्णय को अंतिमता प्राप्त होती है, तब तक सजा देने का मूल उद्देश्य अपना प्रभाव खो देता है, क्योंकि समय बीतने के साथ दंडनीय और सामाजिक प्राथमिकताएं बदल जाती हैं और कारावास की सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है, विशेष रूप से तब जब शामिल अपराध गंभीर न हो। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और इसे किया गया, अपराध करने का उद्देश्य, अभियुक्त का आचरण, उपयोग किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसलिए, यह प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और इसे निष्पादित या कारित करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे।

10. वर्तमान वाद में, अवर न्यायालय ने परीक्षा विधि पर विचार नहीं किया है, यद्यपि सभी अपीलार्थी जीवित हैं, अपीलार्थी संख्या 1 सत्य पाल को धारा 148 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास, धारा 324 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास और धारा 149 के साथ पठित धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत 6 माह के कठोर कारावास के अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया है और अपीलार्थी संख्या 2 और 3, अर्थात् श्री किशन के पुत्र राकेश और

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



चेत राम के पुत्र राकेश को धारा 147 भा.द.सं. के अंतर्गत 12 माह के कठोर कारावास, धारा 149 के साथ पठित धारा 324 भा.द.सं. के अंतर्गत 18 माह के कठोर कारावास और धारा 149 के साथ पठित धारा 323 भा.द.सं. के अंतर्गत 6 माह के कठोर कारावास (प्रत्येक को) की सजा से दोषसिद्ध किया गया है, जिसके लिए अपीलार्थियों को अधिकतम 18 माह के कठोर कारावास की अवधि के लिए दोषसिद्ध किया गया था। इसलिए, ऊपर संदर्भित विधि के दृष्टिगत परीक्षा का लाभ दिया जा सकता था। लेकिन, सजा देते समय इस पहलू पर विचार नहीं किया गया। विद्वान अवर न्यायालय ने एक शब्द भी नहीं लिखा कि अभियुक्त को इस लाभकारी विधान का लाभ क्यों नहीं दिया गया, जबकि धारा 361 द.प्र.सं. के प्रावधानों के अंतर्गत ऐसा करना अनिवार्य था। इसके अतिरिक्त, यह घटना वर्ष 1978 से संबंधित है और इसलिए, न्याय का कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा यदि अपीलार्थियों को इतने लंबे समय के बीत जाने के बाद सजा की अवधि काटने के लिए कारागार भेजा जाता है।

11. आगे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य, (1981) 1 एस.सी.सी. 447 : ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 643 के वाद में अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 के अनुपालन के संबंध में बार और बेंच के कर्तव्य पर चर्चा करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी किया:-

"जिस अपराध के लिए दोषसिद्धि दी गई है, वह धारा 360 द.प्र.सं. या किसी भी दर पर अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 द्वारा आकर्षित होगा। हमारे समक्ष सामग्री अपूर्ण है क्योंकि विचारण न्यायालय ने अपने दंडात्मक कार्यों के निर्वहन में लापरवाही बरती है। हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि किसी अभियुक्त को सजा सुनाना विवेक का एक संवेदनशील प्रयोग है, न कि अनुमान पर कार्य करने वाला कोई नियमित या यांत्रिक नुस्खा। विचारण न्यायालय को परिस्थितियों में न्यायोचित सजा देने में मदद के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र करनी चाहिए थी। अपराधी की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत कारक बहुत प्रासंगिक हैं, हालांकि व्यवहार में आपराधिक न्यायालयों ने शायद ही कभी अपराधी के सामाजिक परिवेश या व्यक्तिगत परिस्थितियों पर ध्यान दिया हो। भले ही धारा 360 द.प्र.सं. आकर्षित न हो, फिर भी दंडादेश देने वाले न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह एक पुनर्वासकारी झुकाव के साथ सजा पर प्रभाव डालने वाले ऐसे तथ्यों को एकत्र करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्रिय हो। वर्तमान वाद में ऐसी सामग्रियों की अनुपस्थिति ने

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



हमें अधिवक्ता से भी बहुत कम सहायता के साथ छोड़ दिया है। वास्तव में बार के सदस्य भी इन विधायी प्रावधानों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते हैं जो किसी अपराधी के साथ इस तरह से निपटने से संबंधित हैं कि वह एक गैर-अपराधी बन जाए। हम इस बात पर जोर देते हैं क्योंकि जो विधान सजा में सुधार से संबंधित हैं उन्हें 'माइनर एक्ट' माना गया है और, इसलिए, बहुत कम महत्व का माना गया है। यह पूरी तरह से गलत दृष्टिकोण है और भले ही बार मदद न करे, पीठ को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम जैसे अधिनियमों में निहित सजा देने के मानवीय मिशन को पूरा करना चाहिए।"

12. कि यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस माननीय न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; [2015 लॉ सूट (इलाहाबाद) 1343]** के वाद में, परिवीक्षा की विधि को लागू करने और उचित मामलों में अभियुक्तों को लाभकारी विधान का लाभ देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त लाभकारी विधान दृष्टि से ओझल हो गया है और यहां तक कि न्यायाधीशों ने व्यावहारिक रूप से विधि के इस प्रावधान को भुला दिया है। इस प्रकार, वाद से अलग होने से पूर्व, यह न्यायालय महसूस करता है कि मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहूंगा, यदि विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों के लिए चेतावनी का एक शब्द नहीं लिखा जाता है। इस न्यायालय के महानिबंधक को इस निर्णय की प्रति उत्तर प्रदेश के सभी जिला न्यायाधीशों को प्रसारित करने का निर्देश दिया जाता है, जो बदले में अपने अधीन कार्यरत सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच इस आदेश की प्रति का प्रसार सुनिश्चित करेंगे और इस निर्णय का सख्त अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। राज्य के जिला न्यायाधीशों को भी ऐसे मामलों से निपटने वाले सभी न्यायालयों, अर्थात् विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों से हर महीने रिपोर्ट मांगने का निर्देश दिया जाता है और यह बताने के लिए कहा जाता है कि कितने मामलों में अभियुक्तों को उपरोक्त प्रावधानों का लाभ दिया गया है। जिला न्यायाधीशों को प्रत्येक मासिक बैठक में व्यक्तिगत रूप से ऐसे मामलों की निगरानी करने का भी निर्देश दिया जाता है। संबंधित जिला न्यायाधीश महानिबंधक को मासिक विवरण भेजेंगे कि विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



कितने मामलों में अभियुक्तों को उपरोक्त लाभकारी विधान का लाभ दिया है। तत्काल अनुपालन के लिए इस आदेश की एक प्रति महानिबंधक के समक्ष रखी जाए।"

13. आगे माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद; (2004) 7 एस.सी.सी. 659 में अपीलार्थियों को अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ प्रदान किया है, और निम्नानुसार टिप्पणी किया है:

"अभियुक्त की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि दुर्घटना वर्ष 1990 की है। पक्षकार शिक्षित हैं और पड़ोसी हैं। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। दुर्घटना दस वर्ष से अधिक पुरानी है। जल निकासी का दावा करने के तुच्छ मुद्दे पर पड़ोसियों के बीच विवाद था। दुर्घटना गुस्से में हुई। सभी पक्षकार शिक्षित हैं और दूर के रिश्तेदार भी हैं। दुर्घटना ऐसी नहीं है कि अभियुक्त को कारावास की सजा भुगतने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें अभियुक्तों को सदाचरण के लिए एक वर्ष का बंधपत्र निष्पादित करने का निर्देश देकर उन्हें परीवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।"

14. कि सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 3534 में अभियुक्त/अपीलार्थियों को परीवीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के बिंदु पर आते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता, पीड़िता पर अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण रखना चाहिए। अपराधी परीवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को उपलब्ध लाभ प्रावधानों में सन्निहित परिसीमा के अधीन है और "कर सकता है" शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र और मामले की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी परीवीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग में अपराधी को रिहा करना है या नहीं, इसका विवेक न्यायालय में निहित है। अपराधी परीवीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियां न्यायालय में तब निहित होती हैं, जब कोई व्यक्ति

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



किए गए अपराध का दोषी पाया जाता है, जो मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा व्यक्ति को दोषी पाते समय किया जा सकता है और यदि न्यायालय समझता है कि वाद की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त को लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय द्वारा इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण प्रक्रम पर भी किया जा सकता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील पर सुनवाई करते समय इस न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है।"

15. कि यह भी ध्यान देने योग्य है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2017 एस.सी. पृष्ठ 660 के वाद में, निम्नानुसार टिप्पणी किया:

"20-.....रतन लाल बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 444 में न्यायमूर्ति सुब्बा राव ने बहुमत के लिए बोलते हुए, इस प्रकार राय दी:-

'यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदार प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसमें सुधार लाना अधिक है। मोटे तौर पर यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उस आयु से अधिक के अपराधियों के बीच, और मृत्यु दंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध करने के दोषी अपराधियों और कम अपराध के दोषी अपराधियों के बीच अंतर करता है। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन, उन्हें भर्त्सना के बाद या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा करने का पूर्ण विवेक न्यायालय को दिया गया है, 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के प्रकरण में न्यायालय को एक व्यादेश जारी किया जाता है कि उन्हें कारावास की सजा न दी जाए जब तक कि वह संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों, जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है, को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत उनसे निपटना वांछनीय नहीं है।"

16. इसी प्रकार, जगत पाल सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 3622 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 323, 452, 506 भा.द.सं. के अंतर्गत अभियुक्तों

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



की दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए परिवीक्षा का लाभ दिया है और अभियुक्तों को छह माह की अवधि के लिए सदाचरण और शांति बनाए रखने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बंधपत्र निष्पादित करने पर रिहा कर दिया है।

17. हाल ही में, **रमेश बनाम राजस्थान राज्य 2025 आई.एन.एस.सी. 46** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को, जो अपनी उन्नत आयु (वृद्धावस्था) में था, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के अंतर्गत परिवीक्षा का लाभ प्रदान करके रिहा कर दिया था।

18. कि यह ध्यान देने योग्य है कि यह घटना बहुत पहले वर्ष 1978 में हुई थी। अभियुक्त-अपीलार्थियों को लंबी आपराधिक कार्यवाही का सामना करना पड़ा है और इन वर्षों के दौरान अपीलार्थियों का कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है।

19. लगाई गई सजा को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलार्थियों के विरुद्ध कोई आपराधिक पूर्ववृत्त नहीं है, न्यायालय अपीलार्थियों को परिवीक्षा पर रिहा करने का लाभ देने के लिए प्रवृत्त है।

20. अतः, दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए, यह निर्देश दिया जाता है कि अपीलार्थी संख्या 1 **सत्य पाल**, अपीलार्थी संख्या 2 **राकेश पुत्र श्री किशन** और अपीलार्थी संख्या 3 **राकेश पुत्र चेत राम** को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम की धारा 4 का लाभ देते हुए रिहा किया जाए। परिणामस्वरूप, अपीलार्थी संबंधित जिला परिवीक्षा अधिकारी के समक्ष व्यक्तिगत बंधपत्रों के साथ दो प्रतिभू और जमानत बंधपत्र दाखिल करने की तिथि से 18 माह की अवधि के लिए शांति और सदाचरण बनाए रखने का एक वचनपत्र भी दाखिल करेंगे।

21. यदि किसी भी शर्त का उल्लंघन होता है, तो अपीलार्थियों को अभिरक्षा में लिया जाए और उन्हें दी गई सजा भुगतनी होगी। उपरोक्त बंधपत्र और प्रतिभू अपीलार्थियों द्वारा विधि और नियमावली के अनुसार निर्णय की तिथि से एक माह के भीतर दाखिल किए जाएंगे।

22. उपरोक्त संशोधन के साथ, अपील तदनुसार **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

23. रजिस्ट्रार (अनुपालन) को निर्देश दिया जाता है कि वह सूचना और आवश्यक अनुपालन के लिए इस निर्णय की प्रमाणित प्रति संबंधित न्यायालय को भेजें।

14 अगस्त, 2026

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



शिवानी श्री.

(न्यायमूर्ति नंद प्रभा शुक्ला)

“अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”